मंगलसूत्र: एक मूल्यांकन

डॉ॰ विभा कुमारी
एसोसिएट प्रोफेसर
कल्याणी विश्वविद्यालय
नदिया, पश्चिम बंगाल

सारांश

'मंगलसूत्र' प्रेमचंद का अंतिम और अपूर्ण उपन्यास है। इसका लेखन कार्य उन्होंने 'गोदान' के प्रकाशित होने के बाद ही आरंभ कर दिया था परंतु अस्वस्थ हो जाने के कारण पूरा नहीं कर सके। मृत्यु के कुछ सप्ताह पूर्व तक घोर पीड़ा और अस्वस्थता की स्थिति में भी वे इसे लिखते रहे परंतु संयोगवश चार अध्याय ही पूरे हुए थे कि स्वयं उनकी जीवन लीला समाप्त हो गई। 'मंगलसूत्र' का जितना अंश लिखा गया है, उसमें शहर के मध्यवर्गीय पात्रों की प्रधानता है। इन चार अध्यायों में आर्थिक विषमता और पूंजीवादी शोषण की समस्या प्रमुख रूप से उभर कर सामने आती है। इसके साथ ही अर्थ प्रधान वर्तमान सामाजिक व्यवस्था और उसको आश्रय देने वाली पूंजीवादी नैतिकता के प्रति अनास्था और विद्रोह की भावना भी व्यक्त की गई है।

मुख्य शब्द

महाजनी सभ्यता, जागीरदारी सभ्यता, समाजवाद, सामंतवाद, मध्यवर्ग, पूंजीवादी व्यवस्था, आदर्शवाद

अध्ययन का उद्देश्य

इस लेख को पढ़कर हम प्रेमचंद के विचारों में होने वाले बदलाव से परिचित हो सकेंगे। 'मंगलसूत्र' तक आते-आते उनकी वैचारिक आस्था समाजवाद में पुष्ट हो जाती है। वे श्रमिकों, किसानों, स्त्री की मुक्ति समाजवादी व्यवस्था में ही देखते हैं।

प्रस्तावना

प्रेमचंद हिंदी के महत्वपूर्ण रचनाकार हैं। उन्होंने हिंदी और उर्दू दोनों भाषाओं में साहित्य की रचना की है। वे मुख्यतः कथाकार हैं। उन्होंने सेवासदन, रंगभूमि, कर्मभूमि, प्रेमाश्रम, गोदान आदि महत्वपूर्ण उपन्यासों की रचना की। जब प्रेमचंद ने लिखना आरंभ किया, उस समय हिंदी उपन्यासों की कोई स्वस्थ परंपरा उनके सामने नहीं थी। तिलस्मी-ऐय्यारी-जासूसी उपन्यासों की चलती हुई परंपरा से हटकर उन्हें अपने उपन्यासों की नवीन विषय वस्तु के अनुरूप नवीन शैली शिल्प का निर्धारण करना पड़ा और साथ ही पाठकीय रुचि को भी अपने

उपन्यासों के अनुरूप एक नया मोड़ देना पड़ा। इन तीनों ही कार्यों को एक साथ उन्होंने इतनी कुशलतापूर्वक संपन्न किया कि हिंदी उपन्यासों की धारा में एक युगांतरकारी दिशा परिवर्तन के लक्षण दिखाई देने लगे। उन्होंने पहली बार हिंदी उपन्यासों को कल्पना लोक से उतार कर सामाजिक यथार्थ की ठोस भूमि पर प्रतिष्ठित किया और उन्हें सोद्देश्यता प्रदान की । उन्होंने वर्ग चेतना के प्रकाश में समाज की ह्रासशील और विकासशील शक्तियों को पहचाना और समाज के स्वस्थ निर्माण के लिए अपने उपन्यासों के माध्यम से विकासशील शक्तियों को सक्रिय सहयोग प्रदान किया। उन्होंने जन-भावना का प्रतिनिधित्व किया और शोषित, पीड़ित मानवता के दुःख दर्द को वाणी प्रदान की। वास्तव में मानव पीड़न की मूल समस्या ही प्रेमचंद के समस्त उपन्यासों में विविध रूप से छाई हुई है।

विषय-विस्तार

'मंगलसूत्र' प्रेमचंद का अंतिम और अपूर्ण उपन्यास है। इसका लेखन कार्य उन्होंने 'गोदान' के प्रकाशित होने के बाद ही आरंभ कर दिया था परंतु अस्वस्थ हो जाने के कारण पूरा नहीं कर सके। मृत्यु के कुछ सप्ताह पूर्व तक घोर पीड़ा और अस्वस्थता की स्थिति में भी वे इसे लिखते रहे परंतु संयोगवश चार अध्याय ही पूरे हुए थे कि स्वयं उनकी जीवन लीला समाप्त हो गई।

'मंगलसूत्र' का जितना अंश लिखा गया है, उसमें शहर के मध्यवर्गीय पात्रों की प्रधानता है। आगे चलकर कथा का विकास किस दिशा में होता और मजदूरों और किसानों को भी कथा–सूत्र में आबद्ध किया जाता, यह सब हमारी कल्पना का विषय है। उपन्यास की समस्या की बात अवश्य बहुत कुछ स्पष्ट हो गई है। इन चार अध्यायों में आर्थिक विषमता और पूंजीवादी शोषण की समस्या प्रमुख रूप से उभर कर सामने आती है। इसके साथ ही अर्थ प्रधान वर्तमान सामाजिक व्यवस्था और उसको आश्रय देने वाली पूंजीवादी नैतिकता के प्रति अनास्था और विद्रोह की भावना भी व्यक्त की गई है। यह भी संकेत किया गया है कि "जिस व्यवस्था से सारे समाज का उद्धार हो सकता है, वह थोड़े से आदमियों के स्वार्थ के कारण दबी पड़ी हुई है।"[1] इस व्यवस्था को बदलकर नवीन सामाजिक व्यवस्था की स्थापना से ही मानव–जाति का कल्याण हो सकता है। संभवतः इस नवीन व्यवस्था को लेखक ने मानवता के मंगल का सूत्र मानकर ही उपन्यास का नामकरण 'मंगलसूत्र' किया है। 'मंगलसूत्र' के निर्माण काल में प्रेमचंद 'महाजनी सभ्यता' शीर्षक अपना बहुचर्चित निबंध लिख चुके थे, जिसमें उन्होंने पूंजीवादी व्यवस्था की विकृतियों और असंगतियों की व्याख्या करते हुए समाजवादी व्यवस्था में अपनी स्पष्ट आस्था व्यक्त थी। यह बात एकदम स्पष्ट है कि 'मंगलसूत्र' 'महाजनी

सभ्यता' शीर्षक निबंध में व्यक्त किए गए विचारों के उपन्यासीकरण का प्रयास था, जो संयोगवश पूरा नहीं हो सका।

'मंगलसूत्र' की कथा देव कुमार और उनकी पारिवारिक समस्याओं से आरंभ होती है। देव कुमार साठ वर्ष के निश्चल और उदार प्रकृति के व्यक्ति हैं। साहित्य–साधना उनके जीवन का आदर्श है, जिसके द्वारा उन्होंने समाज में कीर्ति और सम्मान का अर्जन किया है। यह सम्मान ही उनके आत्म संतोष के लिए पर्याप्त है। धन–संचय की उन्होंने कभी चिंता नहीं की। लेखक लिखते हैं कि -"सम्मान के साथ अपना निबाह होता जाए, इससे ज्यादा वह और कुछ नहीं चाहते थे।"[2] फलत: धनाभाव की स्थिति बनी रहती थी। विवश होकर उन्होंने अपने पूर्वजों की लाखों की संपत्ति सेठ गिरधरदास के हाथ बीस हजार रूपए में बेच दी थी। परंतु इसका उन्हें कोई दुख नहीं था। "उनका सौंदर्य–भावना से जगा हुआ मन कभी कंचन की उपासना को जीवन का लक्ष्य न बना सका। यह नहीं कि वह धन का मूल्य न जानते हों मगर उनके मन में यह धारणा जम गई थी कि जिस राष्ट्र में तीन चौथाई प्राणी भूखों मरते हों वहाँ किसी एक को बहुत–सा धन कमाने का कोई नैतिक अधिकार नहीं है, चाहे इसकी उसमें सामर्थ्य हो।"[3] वे नैतिक आदर्शों और सामाजिक मर्यादाओं के कट्टर समर्थक थे। उनके बड़े पुत्र संत कुमार का दृष्टिकोण ठीक इसके विपरीत था। उसकी दृष्टि में पिता के इस नैतिक आदर्शवाद का कोई मूल्य नहीं था। वह उचित और अनुचित हर संभव उपाय से पिता के द्वारा बेची गई संपत्ति को वापस लेना चाहता था। इस प्रकार प्रेमचंद ने बड़ी कुशलतापूर्वक पिता और पुत्र के वैचारिक संघर्ष के माध्यम से वर्तमान पूंजीवादी युग में परंपरागत सामाजिक मूल्यों के विघटन की समस्या को उभारा है। उपन्यास में कुछ घटनाएं घटित होती हैं जो देवकुमार की संचित आस्था को गहरे तक प्रभावित करती है। लेखक उन घटनाओं के माध्यम से एक ऐसी मनोवैज्ञानिक स्थिति उत्पन्न की है जो देव कुमार को परंपरागत नैतिक आदर्शवाद के हर पक्ष पर तर्क–सम्मत पुनर्विचार करने के लिए विवश कर देती है। लेखक लिखते हैं- "इन दिनों वह यही पहेली सोचते रहते थे कि संसार की कुव्यवस्था क्यों है? कर्म और संस्कार लेकर वह कहीं न पहुंच पाते थे। सर्वात्मवाद से भी उनकी गुत्थी नहीं सुलझती थी। अगर सारा विश्व एकात्म है तो फिर यह भेद क्यों है? एक आदमी जिंदगी भर बड़ी से बड़ी मेहनत करके भी भूखों मरता है और दूसरा आदमी हाथ पांव न हिलाने पर भी फूलों की सेज पर सोता है। यह सर्वात्म है या घोर अनात्म? बुद्धि जवाब देती यहाँ सभी स्वाधीन है, सभी को अपनी शक्ति और साधना के हिसाब से उन्नति करने का अवसर है। मगर शंका पूछती –सबको समान अवसर कहां है? बाजार लगा हुआ है। जो चाहे वहाँ से अपनी इच्छा की चीज खरीद सकता है। मगर खरीदेगा तो वही जिसके पास पैसे हैं। और जब सबके पास पैसे नहीं है तो सबका बराबर अधिकार कैसे माना जाए ? इस तरह का आत्म-मंथन उनके जीवन में कभी नहीं हुआ था।"[4] विचार करते-करते उनके मन में यह तथ्य स्पष्ट होने लगता

है कि इस समाज की न्याय-व्यवस्था निष्पक्ष नहीं है। उस पर पैसेवालों का अधिकार है और वह उन्हीं के स्वार्थ की रक्षा करने का एक साधन मात्र है। वे सोचते हैं– "एक गरीब आदमी किसी खेत से बालें नोच कर खा लेता है, कानून उसे सजा देता है। दूसरा आदमी दिन–दहाड़े दूसरों को लूटता है और उसे पदवी मिलती है, सम्मान मिलता है। कुछ आदमी तरह-तरह के हथियार बांधकर आते हैं और निरीह, दुर्बल मजदूरों पर आतंक जमा कर अपना गुलाम बना लेते हैं। लगान और टैक्स और महसूल कितने ही नामों उसे लूटना शुरू करते हैं और आप लंबा-लंबा वेतन उड़ाते हैं, शिकार खेलते हैं, नाचते हैं, रंगरेलियां मनाते हैं, यही है ईश्वर का रचा हुआ संसार ? यही न्याय है ?"[5] यह आत्म-मंथन शाश्वत मूल्यों की उनकी परंपरानुगत आस्था को हिला देता है। समाज के वे नैतिक आदर्श जिन्हें वे अपने जीवन का सार तत्व समझते आ रहे थे, अब उन्हें खोखले और निस्सार प्रतीत होने लगते हैं। वह सोचने लगते हैं कि ऐसे आदर्शों के पालन के लिए जो अपने जीवन का बलिदान कर देते हैं, वे देवता कहलाने के अधिकारी नहीं हैं- "देवता वह है जो न्याय की रक्षा करें और उसके लिए प्राण दे दे। अगर वह जानकर अनजान बनता है तो धर्म से गिरता है और अगर उसकी आंखों में यह कुव्यवस्था खटकती ही नहीं तो वह अंधा भी है और मूर्ख भी, देवता किसी तरह नहीं। और यहाँ देवता बनने की जरूरत भी नहीं। देवताओं ने ही भाग्य और ईश्वर और भक्ति की मिथ्यायें फैलाकर इस अनीति को अमर बनाया है। मनुष्य ने अब तक इसका अंत कर दिया होता या समाज का ही अंत कर दिया होता, जो इस दशा में जिंदा रहने से कहीं अच्छा होता। नहीं, मनुष्यों में मनुष्य बनना पड़ेगा। दरिंदों के बीच में, उनसे लड़ने के लिए हथियार बांधना पड़ेगा। उनके पंजों का शिकार बनना देवतापन नहीं, जड़ता है। आज जो इतने ताल्लुकेदार और राजे हैं, वह अपने पूर्वजों की लूट का ही आनंद तो उठा रहे हैं।"[6] इस प्रकार इस आत्म-मंथन के पश्चात शोषण पर आधारित पूंजीवादी न्याय- व्यवस्था और धर्म-व्यवस्था से उनकी आस्था उठ जाती है और वे निश्चय करते हैं कि "अगर कानून कर्जदारों के साथ इतना न्याय भी नहीं करता तो कर्जदार भी कानून में जितनी खींचतान हो सके, करके महाजन से अपनी जायदाद वापस लेने की चेष्टा करने में किसी अधर्म का दोषी नहीं ठहर सकता।"[7] देवकुमार के चरित्रांकन में प्रेमचंद की सबसे बड़ी विशेषता है सामाजिक मूल्यों के संदर्भ में उनका आत्म-मंथन और उसके फलस्वरूप उनके विचारों में क्रांतिकारी परिवर्तन। खोखली नैतिकता और विघटनशील सामाजिक मूल्यों के प्रति विद्रोह का तीव्र स्वर जैसा देवकुमार में सुनाई देता है वैसा इससे पूर्व प्रेमचंद के किसी अन्य औपन्यासिक पात्र के मुख से नहीं सुनाई दिया था। यह इस बात की ओर संकेत करता है कि ' मंगलसूत्र' की रचना करते समय प्रेमचंद 'गोदान' से कितना आगे बढ़ चुके थे। यदि तुलनात्मक दृष्टि से देखा जाए तो यह अंतर बहुत स्पष्ट हो जाता है। 'गोदान' में प्रेमचंद ने उद्देश्य निरूपण की सांकेतिक शैली अपनाई है। सामाजिक यथार्थ को सामने रखकर फिर उससे त्राण पाने के लिए किस दिशा में आगे बढ़ना है, यह उन्होंने 'गोदान' के पाठकों की कल्पना पर छोड़ दिया है। इसके विपरीत 'मंगलसूत्र' में उद्देश्य निरूपण के

लिए प्रत्यक्ष शैली का आश्रय ग्रहण किया गया है देवकुमार के द्वारा सामाजिक विकृतियों पर सीधे-सीधे प्रहार किया गया है और दोषपूर्ण सामाजिक व्यवस्था को बदलने के लिए आवाज उठाई गई है।

परंपरागत नैतिक आदर्शवाद और सामाजिक मर्यादाओं के बंधनों में बंधा हुआ 'गोदान' का होरी तिल-तिल करके गल जाता है परंतु 'मंगलसूत्र' के देवकुमार सारहीन सामाजिक और नैतिक मर्यादाओं के प्रति विद्रोह करते हुए यहाँ तक कह जाते हैं कि - "देवताओं ने ही भाग्य और ईश्वर और भक्ति की मिथ्यायें फैलाकर इन अनीति को अमर बनाया है।"[8] वे 'गोदान' के होरी की तरह शोषण का शिकार नहीं बनना चाहते वरन् शोषक दरिंदों से अपनी रक्षा के लिए हथियार बांधने की घोषणा करते हैं। इस प्रकार 'गोदान' और 'मंगलसूत्र' की दिशा एक ही है परंतु दोनों के स्वरों में बहुत अंतर आ गया है। अभिव्यक्ति की जो तीव्रता 'मंगलसूत्र' में है, वह प्रेमचंद के पूर्ववर्ती अन्य किसी उपन्यास में नहीं है। इसी आधार पर यह कहा जा सकता है कि यदि 'मंगलसूत्र' पूरा हो गया होता तो यह प्रेमचंद के विचारधारा का एक प्रतिनिधि उपन्यास होता है।

संत कुमार और उनके मित्र मि. सिन्हा महत्वाकांक्षी मध्य वर्ग के प्रतिनिधि हैं जो अमीरों जैसे ठाट-बाट का स्वप्न देखते हैं और पैसे को ही जीवन में सर्वोच्च स्थान देते हैं। वे इतने व्यक्ति केंद्रित है कि उन्हें अपने सामाजिक उत्तरदायित्व या अन्य किसी सिद्धांत की चिंता नहीं है। धन को प्राप्त करने के लिए वह उचित-अनुचित सभी कुछ कर सकते हैं। यहाँ तक कि धन के लिए प्रेम का झूठा अभिनय करने में या अपने पिता को डॉक्टर से मिलकर पागल घोषित करने में भी उन्हें कोई आपत्ति नहीं है। महत्वाकांक्षी मध्यवर्ग की सभी विशेषताएं उनके चरित्र में विद्यमान है। अतः वे व्यक्ति और टाइप दोनों ही हैं। इसके विपरीत देवकुमार का छोटा पुत्र साधुकुमार जागरूक मध्य वर्ग का प्रतिनिधि पात्र है। जो समाज की ह्रासशील और विकासशील शक्तियों का अंतर समझता है और अपने सामाजिक उत्तरदायित्व के प्रति पूर्णत: सजग है। "सत्याग्रह-संग्राम में पढ़ना छोड़ दिया, दो बार जेल हो आया, जेलर के कटु-वचन सुनकर उसकी छाती पर सवार हो गया और इस उद्दंडता की सजा में तीन महीने काल-कोठरी में रहा।"[9] उसके मन में अपने बड़े भाई संतकुमार की तरह बड़ी-बड़ी महत्वाकांक्षाएं नहीं है। उसकी विचारधारा व्यक्तिकेंद्रित न होकर समाजकेंद्रित है। आर्थिक विषमताग्रस्त शोषित और पीड़ित जन-सामान्य के प्रति उसके हृदय में सहानुभूति का स्रोत विद्यमान है। वह सोचता रहता है कि - "हम तो दोनों वक्त चुपड़ी हुई रोटियां और दूध और सेव-संतरे उड़ाते हैं मगर सौ में निन्नानवें आदमी तो ऐसे भी हैं जिन्हें इन पदार्थों के दर्शन भी नहीं होते। आखिर हममें क्या सुर्खाब के पर लग गए हैं ?"[10] उसके इन विचारों के आधार पर हम यह कल्पना कर सकते हैं कि आगे चलकर उसके चरित्र का विकास प्रेमचंद के द्वारा वर्तमान दूषित सामाजिक व्यवस्था के विरुद्ध संघर्ष करने वाले एक सच्चे समाजसेवी कार्यकर्ता के रूप में किया जाता।

सेठ गिरधरदास आधुनिक पूंजीपतियों की वर्गीय मनोवृति का एक प्रतिनिधि पात्र है। लेखक लिखते हैं- "अंग्रेजी में कुशल, कानून में चतुर, राजनीति में भाग लेने वाले, कंपनियों में हिस्सा लेते थे और बाजार अच्छा देखकर बेच देते थे। एक शक्कर का मिल खुद चलाते थे। सारा कारोबार अंग्रेजी ढंग से करते थे।"[11] इस प्रकार वे बड़े ही व्यवहार-कुशल, शोषण-धर्मी पूंजीपति के साक्षात अवतार हैं। राजनीतिक क्रियाकलाप में भाग लेना और साहित्यकारों का आदर-सम्मान करना उनकी देशभक्ति और उनके साहित्य प्रेम का परिचायक न होकर, उनकी शोषण-वृति को भद्रता के आचरण में छिपाने का एक कौशल मात्र है। इन्हीं के पिता सेठ मक्कूलाल ने देव कुमार की लाखों रुपए की संपत्ति बीस हजार में लिखवा ली थी। जब देवकुमार उन्हें यह सूचना देते हैं कि लड़के उस संपत्ति को वापस लेने के लिए उन पर दावा करना चाहते हैं और उन्हें कुछ ले-दे कर लड़कों से समझौता कर लेने की सलाह देते हैं तो "जिन महाजनी नखों को उन्होंने भद्रता की नर्म गद्दी में छिपा रखा था, वह यह खटका पाते ही पैने और उग्र होकर बाहर निकल आए।"[12] इस तरह स्वार्थ के मर्म पर आघात पहुंचते ही भद्रता का कृत्रिम आवरण हट जाता है और उनका वास्तविक स्वरूप प्रकट हो जाता है। इसलिए देवकुमार कहते हैं कि- "दरिंदों के बीच में उनसे लड़ने के लिए हथियार बांधना पड़ेगा।"[13]

दरअसल जागीरदारी सभ्यता में बलवान भुजाएँ और मजबूत कलेजा जीवन की आवश्यकताओं में परिगणित थे, और साम्राज्यवाद में बुद्धि और वाणी के गुण तथा मूक आज्ञापालन उसके आवश्यक साधन थे। पर उन दोनों स्थितियों में दोषों के साथ कुछ गुण भी थे। मनुष्य के अच्छे भाव लुप्त नहीं हो गये थे। जागीरदार अगर दुश्मन के खून से अपनी प्यास बुझाता था, तो अकसर अपने किसी मित्र या उपकारक के लिए जान की बाजी भी लगा देता था। बादशाह अगर अपने हुक्म को कानून समझता था और उसकी अवज्ञा को कदापि सहन न कर सकता था, तो प्रजापालन भी करता था, न्यायशील भी होता था। दूसरे के देश पर चढ़ाई वह या तो किसी अपमान-अपकार का बदला लेने के लिए करता था या अपनी आन-बान, रोब-दाब कायम करने के लिए या फिर देश-विजय और राज्य विस्तार की वीरोचित महत्वाकांक्षा से प्रेरित होता था। उसकी विजय का उद्देश्य प्रजा का खून चूसना कदापि न होता था। कारण यह कि राजा और सम्राट जनसाधारण को अपने स्वार्थ साधन और धन-शोषण की भटठी का ईंधन न समझते थे। किन्तु उनके दुख-सुख में शरीक होते थे और उनके गुण की कद्र करते थे।

मगर इस महाजनी सभ्यता में सारे कामों की गरज महज पैसा होती है। किसी देश पर राज्य किया जाता है, तो इसलिए कि महाजनों, पूंजीपतियों को ज्यादा से ज्यादा नफ़ा हो। इस दृष्टि से मानों आज दुनिया में महाजनों का ही राज्य है। मनुष्य समाज दो भागों में बंट गया है। बड़ा हिस्सा तो मरने और खपने वालों का है, और बहुत ही छोटा हिस्सा उन लोगों का, जो अपनी शक्ति और प्रभाव से बड़े समुदाय को अपने बस में किये हुए हैं। इन्हें इस बड़े भाग के साथ किसी तरह की हमदर्दी नहीं, जरा भी रू-रियायत नहीं। उसका अस्तित्व केवल इसलिए है कि अपने मालिकों के लिए पसीना बहाये, खून गिराये और एक दिन चुपचाप इस दुनिया से विदा हो जाये। अधिक दुख की बात तो यह है कि शासक वर्ग के विचार और सिद्धान्त शासित वर्ग के भीतर भी समा गये हैं,

जिसका फल यह हुआ है कि हर आदमी अपने को शिकारी समझता है और उसका शरीर है समाज। वह खुद समाज से बिल्कुल अलग है। अगर कोई संबंध है, तो यह कि किसी चाल या युक्ति से वह समाज का उल्लू बनावे और उससे जितना लाभ उठाया जा सकता हो, उठा ले। धन-लोभ ने मानव भावों को पूर्ण रूप से अपने अधीन कर लिया है। कुलीनता और शराफ़त, गुण और कमाल की कसौटी पैसा, और केवल पैसा है।

'मंगलसूत्र' के नारी पात्रों में देवकुमार की पत्नी शैव्या और उनकी पुत्री पंकजा को सरल स्वभाव वाली काम-काजी स्त्री रूप में चित्रित किया गया है। इन चार अध्यायों में उनके स्वभाव का परिचय मात्र दिया गया है। आगे चलकर उनके चरित्र का विकास किस दिशा में होता यह हमारी कल्पना का विषय है। स्त्री पात्रों में संतकुमार की पत्नी पुष्पा का चरित्र विशेष रूप से महत्वपूर्ण है क्योंकि प्रेमचंद ने पुष्पा के चरित्र के माध्यम से नारी समस्या पर एक नए दृष्टिकोण से विचार किया है। वैसे तो प्रेमचंद 'सेवासदन' से लेकर 'गोदान' तक नारी समस्या के विविध पक्षों पर किसी-न-किसी रूप में विचार करते रहे हैं। 'गोदान' में 'वीमेन्स लीग' में मेहता का भाषण इसी समस्या पर प्रकाश डालता है। वास्तव में नारी की सामाजिक मर्यादा के संबंध में मेहता के मुख से जो कुछ कहलाया गया है वह प्रेमचंद के ही विचार हैं जिन पर मध्ययुगीन आदर्शवाद का बहुत कुछ प्रभाव विद्यमान है। 'मंगलसूत्र' तक आते-आते प्रेमचंद की नारी संबंधी दृष्टिकोण में परिवर्तन आया है और वे समाज में नारी के आर्थिक स्वातंत्र्य का समर्थन करने लगे हैं जो समाजवादी विचारधारा से पूरी तरह मेल खाता है। संतकुमार और पुष्पा के प्रसंग में प्रेमचंद ने दिखाया है कि पुरुष प्रधान समाज में नारी आर्थिक दृष्टि से पति की आश्रिता होती आई है। अतः उसे न तो समानता का अधिकार मिलता है और न सम्मान का। संतकुमार समझता है कि –"जो स्त्री पुरुष पर अवलंबित है, उसे पुरुष की हुकूमत माननी पड़ेगी। जब एक औरत अपने अधिकारों के लिए पुरुष से लड़ती है, उसकी बराबरी का दावा करती है तो उसे कठोर बातें सुनने के लिए तैयार रहना चाहिए।"[14] नारी जब इस अपमानजनक स्थिति से बचने की बात सोचती है और समानता के अधिकार की मांग करती है तो जीवन निर्वाह का प्रश्न उसके सामने आ जाता है। पुष्पा नारी की इस आर्थिक विवशता के प्रति और साथ ही समाज में उसके अधिकारों के प्रति सजग है। वह जानती है कि नारी जब तक आर्थिक दृष्टि से आत्मनिर्भर नहीं होती तब तक उसे समाज में उचित सम्मान प्राप्त नहीं हो सकता। समानता का दावा करते हुए वह अपने पति से कहती है- "मैं तुम्हारे घर में जितना काम करती हूँ, इतना ही काम दूसरों के घर में करूं तो अपना निर्वाह कर सकती हूँ कि नहीं। .... तब मैं जो कुछ कमाऊँगी वह मेरा होता। .... तुम कहोगे तुम्हारा जो सम्मान है, वह वहाँ न रहेगा, वहाँ तुम्हारी कोई रक्षा करने वाला ना होगा, कोई तुम्हारे दुख-दर्द में साथ देने वाला न होगा इसी तरह की और भी कितनी ही दलीलें तुम दे सकते हो। मगर मैंने मिस बटलर को आजीवन क्वाँरी रहकर सम्मान के साथ जिंदगी काटते देखा है। .. उनकी इज्जत सभी करते थे और उन्हें अपनी रक्षा के लिए किसी पुरुष का आश्रय लेने की कभी जरूरत नहीं हुई। ....अगर वह डॉक्टरी पढ़कर अपना व्यवसाय कर सकती है तो मैं क्यों नहीं कर सकती?.. हम भी तो वही आत्मबल और शक्ति और कला प्राप्त करना चाहती है लेकिन तुम लोगों के मारे जब कुछ चलने पाये। मर्यादा और आदर्श और जाने किन-किन बहानों से हमें दबाने की और हमारे ऊपर अपनी हुकूमत जमाये रखने की

कोशिश करते रहते हो।"[15] पुष्पा की इन शब्दों में वर्तमान सामाजिक व्यवस्था में नारी की स्थिति और नारी के स्वाभाविक विकास में बाधक परंपरागत सामाजिक मान्यताओं और आदर्शों के विरुद्ध विद्रोह के वैसे ही तीव्र स्वर विद्यमान है जैसे देवकुमार के आत्ममंथन के प्रसंग में शोषण को प्रश्रय देने वाले खोखले नैतिक आदर्शों के विरोध में हमने सुने थे। आगे चलकर पुष्पा के चरित्र के विकास के साथ-साथ प्रेमचंद नारी समस्या का विकास किस रूप में करते, इसकी अब केवल कल्पना ही की जा सकती है। परंतु 'मंगलसूत्र' में उन्होंने जो कुछ लिखा है उससे इतना संकेत अवश्य मिल जाता है कि नारी की सामाजिक मर्यादा के संबंध में प्रेमचंद 'गोदान' की तुलना में बहुत आगे बढ़ आए हैं। 'गोदान' में नारी-आदर्श पर प्रकाश डालते हुए उन्होंने मेहता के मुख से बार-बार यह कहलाया है कि स्त्री-जीवन की सार्थकता आदर्श गृहिणी बनने में है। घर और परिवार ही उसका कार्य क्षेत्र है। उसे घर से बाहर दफ्तर आदि में काम करने तथा चुनावों और राजनीतिक क्रियाकलाप में भाग लेने की आवश्यकता नहीं है। इस प्रकार, नारी-जीवन को आज के युग में बहुमुखी सामाजिक क्रिया-कलाप से विरत करके घर और परिवार तक की सीमित कर देना समाजवादी विचारधारा की दृष्टि से कोई प्रगतिशील दृष्टिकोण नहीं था। परंतु 'मंगलसूत्र' तक आते-आते उनकी धारणा में क्रांतिकारी परिवर्तन हुआ है और वह नारी-संबंधी मध्ययुगीन वायवी आदर्शवाद से मुक्त होकर यथार्थपरक दृष्टि से उनके आर्थिक स्वातंत्र्य के बारे में सोचने लगे हैं।

सब-जज की पुत्री त्रिवेणी या तिब्बी का चरित्र कुछ बातों में 'गोदान' की मालती से मिलता हुआ प्रतीत होता है। जिस प्रकार मालती आरंभ में आधुनिकता में रंगी हुई एक चंचल स्त्री के रूप में हमारे सामने आती है परंतु आगे चलकर मेहता के संपर्क में आने पर उसके विचारों में परिवर्तन आता है और वह समाज-सेवा का व्रत लेकर मानव-कल्याण के लिए अपना जीवन समर्पित कर देती है, उसी प्रकार तिब्बी भी आरंभ में आधुनिकता में रंगी हुई एक चंचल लड़की के रूप में दिखाई देती है परंतु उसके हृदय की गहराई में शोषित और पीड़ित वर्ग के लिए सहानुभूति के अंकुर विद्यमान हैं। भावुकता के क्षणों में वह संतकुमार से कहती है- "श्रम और त्याग का जीवन ही मुझे तथ्य जान पड़ता है।... अच्छा आपका मन नहीं चाहता कि बस हो तो संसार की सारी व्यवस्था बदल डालें ....जिस व्यवस्था से सारे समाज का उद्धार हो सकता है, वह थोड़े से आदमियों के स्वार्थ के कारण दबी पड़ी हुई है।"[16] अनुकूल परिस्थिति प्राप्त होने पर तिब्बी के यह विचार मालती के समान ही समाज-सेवा के संकल्प के रूप में पल्लवित हो सकते हैं। कम-से-कम पाठकों को यह संकेत तो मिल ही जाता है कि प्रेमचंद उसके चरित्र का विकास किस रूप में करते। संभव है उसके यह विचार विकसित होकर उसे समाजवादी विचारधारा का प्रबल समर्थक बना देते।

प्रेमचंद की समाजवादी आस्था की चरम परिणति हम उनके 'महाजनी सभ्यता' शीर्षक से लिखे गए 'हंस' के संपादकीय वक्तव्य में देखते हैं जिसमें वह लिखते हैं— "अब एक नई सभ्यता का सूर्य सुदूर पश्चिम में उदय हो रहा है जिसने इस नारकीय महाजनवाद या पूंजीवादी का जड़ खोदकर फेंक दी, जिसका मूल सिद्धांत दिया है कि प्रत्येक व्यक्ति जो अपने शरीर या दिमाग से मेहनत करके कुछ पैदा कर सकता है, राज्य और समाज

का परम सम्मानित सदस्य हो सकता है और जो केवल दूसरों की मेहनत या बाप-दादों के जोड़ों हुए धन पर रईस बना फिरता है वह पतिततम प्राणी है।"[17] प्रेमचंद की कल्पना में आदर्श सामाजिक व्यवस्था का जो रूप है, उसकी ओर संकेत करते हुए उन्होंने अपने 'संग्राम' नाटक में लिखा है- "आदर्श व्यवस्था है यह है कि सबके अधिकार बराबर हों, कोई जमींदार बनकर कोई महाजन बनकर जनता पर रोब न जमा सके। यह ऊँच-नीच का भेद उठ जाए।"[18] उनका विश्वास था कि रूस की सामाजिक व्यवस्था इसी प्रकार की है। अतः उसे हुए बड़े आदर्श की दृष्टि से देखते थे। शिवरानी देवी से इसी प्रसंग पर वार्तालाप करते हुए उन्होंने कहा था- "हां, रूस जहाँ पर की बड़ों को मार-मारकर दुश्वार कर दिया गया, अब वहाँ गरीबों को आनंद है। शायद यहाँ भी कुछ दिनों बाद रूस जैसा ही हो।"[19] मराठी साहित्यकार टी. टीकेकर से एक भेंट वार्ता में उन्होंने कहा था- "मैं कम्युनिस्ट हूँ। किंतु मेरा कम्यूनिज़्म केवल यह ही है कि हमारे देश में जमींदार-सेठ आदि जो कृषकों के शोषक हैं, न रहें।"[20] यदि 'हंस' और 'नवजागरण' की 1933 के बाद वाली फाइलों को देखें तो पता चल जाएगा कि प्रेमचंद सोवियत संघ के आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक विकास को किस गहरी सहानुभूति के साथ देखते थे और कैसे हार्दिक उद्गार उन्होंने उस देश और व्यवस्था के लिए प्रकट किए। इस प्रसंग में यह भी ध्यान देने योग्य है कि प्रेमचंद सोवियत व्यवस्था के कोरे प्रशस्ति गायक ही नहीं थे वरन् भारत देश के लिए भी उसी प्रकार की समाजवादी व्यवस्था के प्रबल समर्थक थे। उनका कहना था कि "भारत जैसे देश में जहाँ आबादी का बड़ा हिस्सा गरीबों का है, जिसमें पढ़े-अनपढ़ सब तरह के मजदूर हैं, सोशलिज़्म के सिवा उनका आदर्श हो ही क्या सकता है।"[21]

शिवरानी देवी ने एक बार जब उनसे पूछा कि भारत में यह व्यवस्था किस प्रकार लाई जाएगी ? क्या रूस वाले यहाँ भी आएंगे ? तो इसके उत्तर में उन्होंने कहा- वे यहाँ नहीं आएंगे। हम ही लोगों में वहाँ वह शक्ति आएगी। वह हमारे सुख का दिन होगा जब यहाँ मजदूरों और कास्तकारों का राज होगा।"[22] यहाँ पर 'शक्ति' शब्द विशेष रूप से विचारणीय है। प्रेमचंद किसी दैवी शक्ति में विश्वास नहीं रखते थे। अतः शक्ति से उनका आशय क्रांतिकारी शक्ति से था। उनका विश्वास था कि एक दिन भारतीय जनता की क्रांतिकारी शक्ति जागेगी जो पूंजीवादी व्यवस्था का उन्मूलन करके यहाँ भी रूस की तरह समाजवादी व्यवस्था की स्थापना करेगी। जनता की क्रांतिकारी शक्ति में उनका यह विश्वास अंतिम श्वास तक उनके साथ बना रहा।

प्रेमचंद जिस समय 'मंगलसूत्र' की रचना कर रहे थे उस समय देश में मजदूर आंदोलन बड़े पैमाने पर संगठित हो रहा था। कांग्रेस के द्वितीय आंदोलन की असफलता के फलस्वरूप जनसाधारण की आस्था धीरे-धीरे गाँधीवाद से हटकर समाजवाद की ओर उन्मुख हो रही थी और देश के समाजवादी आंदोलनों की गतिविधि में तीव्रता आने लगी थी। संगठित समाजवादी आंदोलनों की शक्ति से त्रस्त होकर ब्रिटिश सरकार ने सन् 1934 में ही भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी पर कानूनी प्रतिबंध लगा दिया था। कम्युनिस्ट प्रभावित ट्रेड यूनियन आंदोलनों का भी इस युग में तीव्रता से विकास हो रहा था। वामपंथी समाजवादी नेता ट्रेड यूनियन आंदोलनों के द्वारा मजदूरों को संगठित करके उन्हें अपने हितों की रक्षा करने के लिए प्रेरित और प्रोत्साहित कर रहे थे। आये दिन दमन और शोषण के विरोध में बड़ी-बड़ी हड़तालें हो रही थीं। औद्योगिक संकट के फलस्वरूप

मजदूरों की बेकारी का लाभ उठाकर जब उद्योगपतियों ने मजदूरी की दर घटाना आरंभ किया तो इसका विरोध करने के लिए जनवरी सन् 1934 में एक 'अखिल भारतीय टेक्सटाइल वर्कर्स कॉन्फ्रेंस' का अधिवेशन बुलाया गया जिसमें एक प्रस्ताव पास करके देश भर में आम हड़ताल करने का निर्णय लिया गया। इससे ट्रेड यूनियन आंदोलन में और अधिक चेतना आई और समाजवादी प्रभाव तीव्र गति से बढ़ने लगा। मजदूर आंदोलन की इस देशव्यापी हलचल की पृष्ठभूमि में प्रेमचंद के द्वारा 'मंगलसूत्र' की रचना की जा रही थी। अतः यह निष्कर्ष सहज ही निकाला जा सकता है कि पूरा हो जाने पर 'मंगलसूत्र' एक मजदूर आंदोलन प्रधान उपन्यास होता। गिरधरदास की शोषण प्रधान मनोवृत्ति और साधुकुमार की शोषितों के प्रति उमड़ती हुई सहानुभूति और उसका दो बार जेल जाना तथा जेल-अधिकारियों के अत्याचारपूर्ण व्यवहार का निर्भीकतापूर्वक विरोध करना आदि उपन्यास के घटनाक्रम के भावी विकास की ओर संकेत कर देते हैं कि गिरधरदास की मिल के मजदूरों का संगठन साधुकुमार के द्वारा किया जाता और इस आंदोलन में तिब्बी भी उसका साथ देती।

'मंगलसूत्र' का जितना अंश लिखा गया है, उसके आधार पर उसके विकास की दिशा का जो संकेत मिलता है, उसे यह निष्कर्ष सहज ही निकाला जा सकता है कि यह प्रेमचंद के अब तक के समस्त उपन्यासों में वैचारिक परिपुष्टता एवं कला की उत्कृष्टता की दृष्टि से उनका सर्वश्रेष्ठ उपन्यास होता। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि सामाजिक प्रगति के लिए प्रेमचंद के युग में जितने भी आंदोलन चले हैं, उन सबके विविध पक्षों के यथार्थपरक चित्र उनकी रचनाओं में विद्यमान हैं और इस नाते उनका 'मंगलसूत्र' मजदूर आंदोलन का एक भावात्मक इतिहास कहा जा सकता है। दूसरी बात यह है कि उनकी जनवादी आस्था आरंभ से अंत तक एक समान अडिग और स्थिर रही है। प्रत्येक स्थिति में हम उन्हें शोषित और पीड़ित मानवता के प्रबल समर्थक और शुभचिंतक के रूप में देखते हैं। जनता के दुख-दर्द को वाणी प्रदान करने में उन्होंने अपने हृदय की सरसता और सहानुभूति का अक्षय कोष उन्मुक्त कर दिया है। तीसरी बात समस्या के समाधान की है जिसकी खोज करते हुए उन्हें 'सेवासदन' से 'मंगलसूत्र' तक एक लंबी यात्रा करनी पड़ी है और अंत में आकर जनता के दुख-दर्द के निवारण के लिए उन्होंने समाजवादी व्यवस्था में निर्भ्रांत आस्था व्यक्त की है। आज प्रेमचंद हमारे बीच नहीं है परंतु उनकी परंपरा जीवित है और देश के लेखकों से मांग करती है कि समाज में आए हुए शोषण, अनाचार और उत्पीड़न का अपने साहित्य में पूरी शक्ति लगाकर विरोध करें और समता पर आधारित शोषण मुक्त समाज की स्थापना के लिए अनुकूल वातावरण की सृष्टि करने में योग देकर अपने साहित्यिक उत्तरदायित्व का निर्वाह करें।

संदर्भ

[1] प्रेमचंद, मंगलसूत्र, साँई ईपब्लिकेशंस, प्रकाशन: 2014, इंदौर, पृष्ठ: 28

[2] वही, पृष्ठ: 05

[3] वही, पृष्ठ: 07

[4] वही, पृष्ठ: 35

[5] वही, पृष्ठ: 36

[6] वही, पृष्ठ: 36

[7] वही, पृष्ठ: 37

[8] वही, पृष्ठ: 36

[9] वही, पृष्ठ: 16

[10] वही, पृष्ठ:17

[11] वही, पृष्ठ: 37

[12] वही, पृष्ठ: 39

[13] वही, पृष्ठ: 36

[14] वही, पृष्ठ: 10

[15] वही, पृष्ठ: 12

[16] वही, पृष्ठ: 28

[17] हंस- सितंबर, 1936

[18] प्रेमचंद, संग्राम (नाटक), प्रथम संस्करण 1956, पृष्ठ: 62-63

[19] देवी शिवरानी, प्रेमचंद: घर में, नयी किताब प्रकाशन, प्रथम संस्करण: 2020, दिल्ली, पृष्ठ:116

[20] गुरु डॉ. राजेश्वर, प्रेमचंद: एक अध्ययन, मध्य प्रदेशीय प्रकाशक समिति, प्रथम संस्करण 1958, भोपाल, पृष्ठ: 101

[21] अमृतराय, प्रेमचंद: विविध प्रसंग, हंस प्रकाशन, 1962, पृष्ठ: 217

[22] देवी शिवरानी, प्रेमचंद: घर में, नयी किताब प्रकाशन, प्रथम संस्करण: 2020, दिल्ली पृष्ठ:116